8

''निश्चय ही, आप मुझे नहीं कह सकते!''

(2:1-3, 17-24)

इस शृंखला के पिछले तीन पाठों में हमने अध्याय 1 में अन्यजातियों के दोषी ठहराए जाने का अध्ययन किया (आयतें 18-32)। यह कल्पना करना कठिन है कि पौलुस के अन्यजाति संसार के पापी होने की चर्चा करते समय यहूदियों ने कितने ज़ोर से सिर हिलाते हुए सहमति जताई होगी, ''बिल्कुल सही! आमीन। हे भाई, करते रहो!'' वे कितने स्तब्ध रह गए होंगे, जब पौलुस ने एक दम से प्रकाशबिन्दु अन्यजातियों से उनकी ओर घुमा दिया: ''सो हे दोष लगाने वाले, तू कोई क्यों न हो; तू निरुत्तर है! क्योंकि जिस बात में तू दूसरे पर दोष लगाता है, उसी बात में अपने आप को भी दोषी ठहराता है, इसलिए कि तू जो दोष लगाता है, आप ही वही काम करता है'' (रोमियों 2:1)।

इस बात में कुछ संदेह है कि 2:1-16 में पौलुस यहूदियों से बात कर रहा था या यहूदियों के लिए इसकी विशेष टिप्पणियां आयत 17 से पहले आरम्भ नहीं होतीं। जैसा कि हम देखेंगे, 1 से 16 आयतों को किसी पर भी जिसे उद्धार के लिए नैतिक सुधार की आवश्यकता हो लागू किया *जा* सकता है। परन्तु मेरा मानना है कि अध्याय 2 के पहले भाग में पौलुस का मुख्य लक्ष्य वही है, जो इस अध्याय के अन्त में है। उस निष्कर्ष के कुछ कारण इस प्रकार हैं।[1]

(1) अपने पत्र के मुख्य भाग में पौलुस का पहला उद्देश्य यह आरोप लगाना था कि ''यहूदी और यूनानी दोनों ... सब पाप के वश में हैं'' (3:9)। यह साबित करने के बाद कि अन्यजाति लोग पापी थे, उसके लिए अपना ध्यान यहूदियों पर लाना और यह दिखाना की वे भी पापी थे, स्वाभाविक है।

(2) अध्याय 1 के अन्तिम भाग में पौलुस ने अन्य पुरुष ''वे'' का इस्तेमाल किया। 2:1 में वह मध्यम पुरुष (''तू'') पर आ गया। ''सो *तू* निरुत्तर है। ...'' आयत 17 इसी ढंग से जारी रहती है: ''... *तू* यहूदी कहलाता है। ...'' आयत 17 में ''यहूदी'' पदनाम इस आयत वाले ''तू'' की पहचान के लिए लगता है।

(3) आयत 1 में पौलुस ने जिन लोगों को सम्बोधित किया उन पर वही काम करने का आरोप लगाया जिसे वे गलत ठहरा रहे थे। 2:21-23 में पौलुस ने यहूदियों की ओर से ऐसे परस्पर विरोध के स्पष्ट उदाहरण दिए। फिर उनके बीच में जिन्हें 2:1-16 में सम्बोधित किया गया था और 2:17- 29 वाले यहूदियों में एक सम्बन्ध मिलता है।

(4) 1 से 16 आयतों वाले पाप विशेषकर यहूदियों के पाप नहीं थे, बल्कि वे ऐसे पाप थे जो

यहूदियों में पाए जाते थे। यहूदी लोग दूसरों का न्याय करने वाले लोग थे (2:1, 3; मत्ती 7:1, 2)। वे उन्हीं पापों के लिए जो वे स्वयं करते थे, दूसरों पर दोष लगाते थे (2:1, 3; मत्ती 7:3-5[2])। उन्हें लगता था कि वे परमेश्वर के न्याय से बच सकते हैं क्योंकि वे अब्राहम की संतान हैं (2:3; मत्ती 3:9क)। उन पर पश्चात्तापहीन मन होने का आरोप था (2:5; मरकुस 3:5)।

यदि अध्याय 2 के आरम्भ से ही पौलुस के दिमाग में यहूदी लोग थे तो उसने आयत 17 तक उनकी बात क्यों नहीं सुनी? शायद यह प्रेरित वैसे ही ढंग का इस्तेमाल कर रहा था जैसा राजा दाऊद के साथ नातान ने इस्तेमाल किया। नातान ने *पहले तो* न्याय की दाऊद की इच्छा को जगाया (2 शमूएल 12:1-6) और फिर कहा "*तू ही* वह आदमी है!" (आयत 7)।

अध्याय 2 का अध्ययन करते समय मैं यह मानकर चलूंगा कि पौलुस के दिमाग में पूरे अध्याय में यहूदी लोग थे। इसके साथ ही मैं किसी भी व्यक्ति पर इसे लागू करूंगा, जिन्हें लगता है कि वे "इतने भले" या "इतने धार्मिक" हैं कि परमेश्वर के दण्ड के नीचे नहीं आ सकते।

इस पाठ को मैंने "निश्चय ही, आप *मुझे* नहीं कह सकते!" नाम दिया है, क्योंकि यहूदियों के लिए यह मानना कठिन (या असम्भव सा) होगा कि वे अन्यजातियों द्वारा किए गए पापों के दोषी हैं। 1 स 3 आयतों पर 17 से 24 आयतों के बीच पाई जाने वाली समानताओं के बारे में मैंने उन दोनों भागों को इस प्रस्तुति में जोड़ दिया है। पहली आयतों पर हमारी चर्चा नैतिक रूप से भले व्यक्ति पर केन्द्रित होगी जबकि दूसरी आयतों में हम गम्भीर रूप से धार्मिक व्यक्ति पर चर्चा करेंगे। पौलुस का निष्कर्ष यह होगा कि हर कोई पापी है जिसे उद्धार की आवश्यकता है चाहे उनका नैतिक मापदण्ड कितना भी क्यों न हो और वे कितने भी धार्मिक क्यों न हों।

नैतिक रूप से भला व्यक्ति (2:1-3)

पौलुस यहूदी पाठकों के उत्तर का पूर्वानुमान लगा रहा था। शुक्र है कि हम इन खतरनाक पापियों जैसे नहीं हैं, जिनके बारे में अभी-अभी बताया गया था! अन्यजातियों के उलट हमारे पास व्यवस्था के मानक है! इसलिए हम नैतिक रूप से श्रेष्ठ हैं! परिणामस्वरूप पौलुस के शब्द उन्हीं के लिए हैं जिन्हें लगता है कि वे "भले लोग" होने के आधार पर बच जाएंगे।

> परमेश्वर के विरुद्ध हर प्रकार का विद्रोह व्यभिचार का रूप नहीं लेता। ... खोए होने का एक रूप है जो नैतिक रूप से प्रकट होता है। यह नैतिकता से इसके लगाव के कारण परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह नहीं लगता है। तौभी अंधेरा और अपश्चात्तापी मन बेदाग बाहरी सजावट के नीचे टिक जाता है [देखें मत्ती 23:25-28]।[4]

नैतिक भलाई यहूदियों को बचा नहीं पाई

अध्याय 2 का आरम्भिक शब्द "से" यह संकेत देता है कि 1 और 2 अध्याय आपस में जुड़े हुए हैं। अध्याय 1 अन्यजातियों की आबोहवा के पाप के साथ मैच किया: वे उन्हें जो पाप करते थे "प्रसन्न होते" थे (आयत 32)। अधिकतर यहूदियों का ऐसा हाल नहीं था। अनैतिकता की खुलेआम तारीफ करने के बजाय वे इसकी हंसी उड़ाते थे।[5] परन्तु यह उन्हें दोषरहित नहीं बना देता है। पौलुस ने अध्याय 2 का आरम्भ इन कठोर शब्दों से किया: "सो हे दोष लगाने वाले, तू कोई क्यों न हो,[6] तू निरुत्तर है! क्योंकि जिस बात में तू दूसरे पर दोष लगाता है, उसी बात में अपने

आप को भी दोषी ठहराता है, इसलिए कि तू जो दोष लगाता है, आप ही वही काम करता है'' (आयत 1क, ख)। NLT में अध्याय 2 के आरम्भ में इस प्रकार लिखा गया है: ''हो सकता है कि तुम कह रहे हो, 'तुम कितने खतरनाक लोगों की बात कर रहे हो!' पर तुम भी इतने ही बुरे हो। ...''

पौलुस ने कहा कि अन्यजाति लोग ''निरुत्तर'' हैं (1:20); अब उसने यही बात यहूदी को कही कि ''तू निरुत्तर'' है (2:1)। दोनों एक ही आत्मिक मार्ग में चल रहे थे। दोनों को परमेश्वर की ओर से प्रकाशन मिला था (1:18-20 [देखें 2:15]; 2:17, 20)। दोनों ने परमेश्वर की इच्छा को नहीं माना था (1:21-31; 2:8, 23)। दोनों को मालूम था कि आज्ञा न मानने से दण्ड मिलेगा (1:32; 2:2)। इसलिए दोनों के पास कोई बहाना नहीं था (1:20; 2:1)।

यहूदियों की एक खामी कठोर न्याय के प्रति पूर्वप्रवृत्ति थी (देखें मत्ती 7:1-5)। पौलुस ने कहा ''हे दोष लगाने वाले, तू कोई क्यों न हो, तू निरुत्तर है ...'' (रोमियों 2:1क, ख) अनुवादित शब्द ''दोष लगाने वाले'' (*krino*) के रूप चार बार आयत 1 में इस्तेमाल किए गए हैं। शब्द का मुख्यतया अर्थ ''निर्णय लेना या न्याय करना'' है। *Krino* का इस्तेमाल हमेशा बुरे अर्थ में नहीं होता (देखें यूहन्ना 7:24)। जीवन में से गुजरते हुए हमारे लिए न्याय करना और निर्णय लेना आवश्यक होता है (रोमियों 14:5) में अनुवाद हुआ शब्द ''मानता है'' मूल शब्द के *krino* से लिया गया है, परन्तु *कई बार* न्याय करना गलत होता है। इस मामले में पौलुस ने *बेमेल* न्याय को गलत ठहराया। उसने कहा, ''क्योंकि जिस बात में तू दूसरे पर दोष लगता है उस बात में अपने आपको भी दोषी ठहराता है, इसलिए तू जो दोष लगता है स्वयं भी वह काम करता है'' (2:1ग)। ''दोष लगाता'' के लिए *krino* के ''एक मजबूत रूप''[7] से लिया गया *katakrino* है।

पौलुस के कहने का अर्थ आवश्यक तौर पर यह नहीं था कि यहूदी लोग अध्याय 1 में बताए गए *विशेष* पापों के दोषी थे, परन्तु वे *वैसे ही* पापों के दोषी थे। बांसुरी बजाने वाले ने हो सकता है कि उस पर बहुधुनें न बजाई हों जो किसी दूसरे ने बजाई हों, पर इसमें उन्हीं सुरों पर बजाया होता है। अपने लेख में मैंने अंग्रेज़ी शब्दकोष के हर शब्द का इस्तेमाल नहीं किया है पर मैंने वर्णमाला के सभी अक्षरों का इस्तेमाल किया है। पौलुस ने अन्यजातियों पर मूर्तिपूजा (1:21-25), अनैतिकता (1:24, 26, 27) और दुष्टता (1:28-32) का आरोप लगाया था। जैसा कि हम देखेंगे पाप के लिए यहूदियों को निरुत्तर करने में उसने इन तीन श्रेणियों का इस्तेमाल किया (2:21, 22)।

कथनी और करनी एक जैसी होना कठिन है! हमारे प्रभु की कथनी और करनी एक है (याकूब 1:17; इब्रानियों 13:8), परन्तु हमारी कथनी और करनी आमतौर पर एक जैसी नहीं है।[8] हम ''परमेश्वर के मन्दिर को नाश करने'' के लिए गैर कानूनी नशों का इस्तेमाल करने वालों पर दोष लगा सकते हैं (देखें 1 कुरिन्थियों 3:16, 17; 6:19) जबकि अपनी देह की सम्भाल करने में नाकाम रहते हैं।[9] कई लोग कानून तोड़ने वालों को धोखेबाज और हत्यारे तक कहते हैं जबकि यातायात के नियमों को तोड़ते हुए उन्हें कुछ नहीं लगता (देखें रोमियों 13:1-5)। अन्य लोग बैंकों को लूटने वालों को तो गालियां निकालते हैं, जबकि कर न देकर सरकार को धोखा देना उन्हें कुछ नहीं लगता (देखें 13:6, 7)। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जो यह बहस करते हैं कि बहस करना गलत है और ऐसे भी लोग हैं, जो अलोचना करने वालों का निर्णय करते हैं।[10] दूसरे का पाप देखना आसान होता है, जबकि अन्दर झांकना उतना ही कठिन (मत्ती 7:3-5; 23:24)!

यहूदी लोग अपने आप में ही दोषी थे क्योंकि दूसरों में पाप को देखने की उनकी ''खूबी'' इस बात का प्रमाण थी कि वे पाप को पहचान सकते हैं। इसके अलावा स्पष्ट रूप से इस बात से भी अवगत थे कि पाप परमेश्वर की इच्छा के विरुद्ध है। ये बातें सच होने के कारण अपने आप में धर्मी होने के बजाय उन्हें दुखद रूप से और दीनतापूर्वक अपने पापी होने का पता होना चाहिए था।

पहले पौलुस ने कहा कि अन्यजाति लोग ''परमेश्वर की वे विधि जानते हैं कि ऐसे-ऐसे [पापपूर्ण] काम करने वाले मृत्यु के दण्ड के योग्य हैं'' (1:32)। यहां उसने कहा, ''हम [यहूदी] जानते हैं कि ऐसे ऐसे काम करने वालों पर परमेश्वर की ओर से ठीक-ठीक दण्ड की आज्ञा होती है'' (2:2)। ''ठीक-ठीक'' के बजाय यूनानी धर्म शास्त्र का अर्थ ''सच्चाई के अनुसार है'' (देखें KJV)।[11] यहूदी लोग जाति के अनुसार न्याय कर रहे थे पर परमेश्वर ने सच्चाई के अनुसार न्याय करने वाला होना था। उसने पक्षपात रहित होना था अर्थात किसी का पक्ष नहीं लेना था।

पौलुस ने आगे कहा, ''और हे मनुष्य, तू जो ऐसे-ऐसे काम करने वालों पर दोष लगाता है, और आप वे ही काम करता है; क्या यह समझता है, कि तू परमेश्वर की दण्ड की आज्ञा से बच जाएगा?'' (आयत 3) कई यहूदी यह सोचते थे कि वे ''परमेश्वर के न्याय से बच जाएंगे'' क्योंकि वे परमेश्वर के चुने हुए लोग हैं। उन्हें लगता था कि ''परमेश्वर काफ़िरों'' का न्याय करता है, पर वह यहूदियों का विशेष रक्षक है।[12] यहूदी अगुवे कहते थे, ''यहोवा हमारे बीच में है, इसलिए कोई विपत्ति हम पर न आएगी'' (मीका 3:11)। जब यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने परमेश्वर के न्याय की बात की तो उसने अपने सुनने वालों को ताड़ना दी, ''अपने-अपने मन में यह न सोचो कि हमारा पिता अब्राहम है'' (मत्ती 3:9क)। परमेश्वर की प्रेरणा रहित यहूदी प्राचीन स्रोतों में कुछ यहूदियों के व्यवहार का एक नमूना यहां है:

> ''परमेश्वर पृथ्वी की सारी जातियों में से केवल इस्राएल से प्रेम करता था।''[13]
>
> ''परमेश्वर अन्यजातियों का न्याय एक मत और यहूदियों का दूसरे मत से करेगा।''[14]
>
> ''सब इस्राएलियों को आने वाले संसार में भाग मिलेगा।''[15]
>
> ''अब्राहम नरक के द्वार पर बैठा है और यह अनुमति नहीं देता कि खतना किया हुआ इस्राएली वहां प्रवेश करेगा।''[16]

पौलुस के अनुसार ऐसा तर्क गलत था। केवल यहूदी होने का अर्थ यह *नहीं* था कि वे ''परमेश्वर के न्याय से बच'' जाएंगे। वे अन्यजातियों से नैतिक रूप में श्रेष्ठ हो सकते हैं; तौभी वे पापी ही थे, जिन्हें परमेश्वर के अनुग्रह की आवश्यकता थी।

नैतिक भलाई किसी का उद्धार नहीं करेगी

मैं संसार की कई जगहों में गया हूं और कई धार्मिक दर्शनों को जानता हूं। परन्तु मुझे लगभग

हर देश में जहां भी गया हूं, लगभग एक जैसा विश्वास मिला है: यह विश्वास कि लोग *भले* लोग होने के आधार पर स्वर्ग में जाएंगे। इसके अलावा वे जहां भी रहते हैं, अधिकतर का विचार यही है कि वे भले लोग *हैं* और इसलिए वे अपने परमेश्वर (या देवताओं) के सामने खड़े होने को ''तैयार'' हैं। ऐसा निष्कर्ष आमतौर पर इस सरकार के गलत तर्क पर आधारित होता है कि ''मैं वे बुरे काम नहीं करता जो दूसरे करते हैं। मैं वे काम नहीं करता इसलिए मैं उनसे अच्छा हूं, इसलिए मैं उनसे बेहतर हूं, इस कारण मुझे सही होना चाहिए!'' तर्क की किस्म वैसे ही हास्यास्पद है, जैसी यह सोच कि तुम ने दो मिलियन डॉलर देने हैं और मैंने केवल एक मिलियन डॉलर देना है। मेरा कर्ज़ा तेरे जितना नहीं है, इसलिए मैं कर्ज़ से मुक्त हूं।[17]

चाहे हम अपने आपको नैतिक तौर पर भले मानें या बुरे, तथ्य यह है कि हम सब पापी हैं (3:10, 23) जो आत्मिक तथा सनातन मृत्यु के योग्य हैं (6:23)। यदि एक व्यक्ति अपनी भलाई के आधार पर उद्धार पा सकता है, तो दोनों पा सकते हैं। यदि दोनों पा सकते हैं तो सौ लोग पा सकते हैं, यदि सौ लोग पा सकते हैं तो सब लोग पा सकते हैं, क्योंकि ''परमेश्वर किसी का पक्ष नहीं करता'' (प्रेरितों 10:34)। यदि सबका उद्धार उनकी भलाई के द्वारा हो सकता तो मसीह को मरने की कोई आवश्यकता नहीं होनी थी, परन्तु बाइबल सिखाती है कि उसके लिए मरना आवश्यक *था* क्योंकि मनुष्य जाति के लिए उद्धार का कोई और ढंग *नहीं* था (मत्ती 26:39)।

यीशु ने कहा, ''भले चंगों को वैद्य की आवश्यकता नहीं, परन्तु बीमारों को है, मैं धर्मियों को नहीं, बल्कि पापियों को बुलाने आया हूं'' (मरकुस 2:17)। यीशु उनके लिए नहीं कह रहा था जो *सचमुच* धर्मी थी, बल्कि उनके लिए कह रहा था, जो *अपने आपको* धर्मी *समझते* थे। जब तक उन्हें लगता था कि वे धर्मी हैं, पापी नहीं तब तक उन्होंने उसके पास नहीं आना था, वैसे ही जैसे जब तक किसी को यह विश्वास न हो कि उसे बच्चों के पास जाना आवश्यक है तब तक वह नहीं जाएगा। बचाए जाने के लिए पहला कदम अपने पाप को मान लेना और प्रभु के लिए अपनी आवश्यकता को मानना है।

जब मैं यह कहता हूं कि हम अच्छा जीवन जीकर उद्धार नहीं पा सकते तो मुझे गलत न समझें। मैं यह नहीं कह रहा कि उच्च नैतिक मापदण्ड अनावश्यक हैं। रोमियों की पुस्तक में बाद में पौलुस ने लिखा, ''इस संसार के सदृश न बनो; परन्तु तुम्हारे मन के नये हो जाने से तुम्हारा चाल-चलन भी बदलता जाएगा'' (12:2क)। उसने यह भी कहा कि ''मैं यह चाहता हूं कि तुम भलाई के लिए बुद्धिमान परन्तु बुराई के लिए भोले बने रहो'' (16:19ख)। जो भी व्यक्ति प्रभु को प्रसन्न करना चाहता है वह पापपूर्ण संसार से अलग जीवन बिताने की कोशिश करेगा। मेरे कहने का अर्थ *है* कि हमें यह अहसास होना आवश्यक है, अपनी पूरी कोशिश कर लेने के बावजूद कि हम अपने भले काम से अपने लिए उद्धार कमा नहीं सकते। हमारा उद्धार परमेश्वर के अनुग्रह से होना आवश्यक है। वरना हमारा उद्धार बिल्कुल नहीं होगा!

गंभीर धार्मिक व्यक्ति (2:17-24)

अगले पाठ में हम अध्याय 2 के पहले भाग में वापस जाएंगे। अभी के लिए हम 17 से 24 आयतों में जाएंगे। 1 से 3 आयतों में ज़ोर यहूदियों की अन्यजातियों से श्रेष्ठ होने की भावना पर है। 17 से 24 आयतों में पौलुस ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया कि वे आत्मिक और धार्मिक तौर

पर अपने आपको बेहतर मानते थे।

बहुत धार्मिक होने से यहूदियों का उद्धार नहीं हुआ

(1) ज़बर्दस्त मौके। इस भाग में पौलुस ने पहले यहूदियों को मिलने वाले मौकों की सूची दी। आयत 20 के अन्त में फिलिप्स ने यह टिप्पणी जोड़ी है: ''बिना संदेह के तुम्हें बहुत बड़े मौके मिले हैं।'' कइयों को लगता है कि पौलुस इस भाग में व्यंग्य जोड़ रहा था, पर यह यहूदी मसीहियों और अन्यजाति मसीहियों के बीच सम्बन्ध सुधारने की उसकी इच्छा वाले स्वभाव से मेल खाता नहीं लगता। यहूदियों के बारे में पौलुस ने जो कुछ भी कहा या तो वह सच था या सच होना *चाहिए* था।

यूनानी धर्मशास्त्र में आयत 17 का आरम्भ अनुवादित शब्द ''यदि'' (*ei*) से होता है, जो ''''प्रथम श्रेणी का सशर्त वाक्य' एक व्याकरणीय संरचना जो *मानती है* कि शर्त पूरी हो गई है।''[18] इसलिए इस वाक्य में *ei* का अनुवाद ''क्योंकि'' हो सकता है। वास्तव में पौलुस कह रहा था *क्योंकि* तू ''यहूदी' कहलाता है और *क्योंकि* तू व्यवस्था पर भरोसा रखता है और *क्योंकि* परमेश्वर में घमण्ड करता है' आदि-आदि, आयत 21 तक।''[19]

यहूदियों को एक पवित्र नाम मिला था: ''यहूदी।''[20] यहूदियों को एक लाभ उनकी धार्मिक विरासत मिली थी। यह ''तू 'यहूदी' कहलाता[21] है'' (आयत 17क) में संकेत मिलता है। पदनाम ''यहूदी'' पहली बार 2 राजाओं 16:6 में मिलता है (देखें KJV)। मूल में यह यहूदा के दक्षिणी राज्य के लोगों को कहा गया था (2 राजाओं 16:6)। बाबुल की दासता के बाद इसे पूरे इस्राएल के लिए लागू किया गया (देखें एज्रा 5:1; नहेम्याह 13:23), शायद इसलिए क्योंकि दासता से वापस आने वाले मुख्यतया दक्षिणी राज्य के लोग थे। नये नियम के समय तक ''यहूदी'' इस्राएलियों के लिए पसंदीदा नाम बन गया था (देखें रोमियों 1:16; 2:9, 10, 17, 28, 29; 3:1, 9, 29; 9:24; 10:12)। वे यह नाम गर्व से लेते थे।

यहूदियों को एक पवित्र दस्तावेज़ मिला था: मूसा की व्यवस्था। दूसरा लाभ यह था कि परमेश्वर ने यहूदियों को व्यवस्था दी थी। पौलुस ने कहा, ''[तू] व्यवस्था पर भरोसा रखता है''[22] (2:17ख)। अनुवादित शब्द ''व्यवस्था'' (*nomos*) का इस्तेमाल रोमियों द्वारा कई ढंगों से होता था।[23] इस विशेष परिस्थिति में यह शब्द मूसा की व्यवस्था के लिए है। NASB में व्यवस्था के लिए अंग्रेजी शब्द Law में ''L'' बड़ा देकर यह संकेत दिया गया है। यहूदी लोग इस तथ्य पर गर्व करते थे कि पृथ्वी की सब जातियों में से उन्हें परमेश्वर का विशेष दस्तावेज़ अर्थात लिखित व्यवस्था दी गई थी।

न केवल उनके पास व्यवस्था थी, बल्कि वे इसकी विधियों से परिचित भी थे। पौलुस ने कहा, ''[तू] उसकी इच्छा जानता[24] और व्यवस्था की शिक्षा पाकर उत्तम-उत्तम बातों को प्रिय जानता है'' (आयत 18)। ''शिक्षा पाकर'' का अनुवाद *katecheo* शब्द में मिला है। इसका अर्थ मौखिक निर्देश मिलना है।[25] पवित्र शास्त्र की प्रतियां हाथ से बनाई जानी थीं, इसलिए अधिकतर लोगों के पास व्यक्तिगत प्रतियां नहीं थीं। उन्होंने वचन को सुनकर जाना था (गुडस्पीड)।

इसके अलावा न केवल उन्होंने व्यवस्था को जाना था, बल्कि उसे लागू करना भी सीखा था। इस प्रकार वे ''उन बातों को जो आवश्यक हैं, प्रिय जान'' सकते थे। यह वाक्यांश कुछ अस्पष्ट सा

है। ''प्रिय जानना'' शब्द का अनुवाद (*dokimazo*) से किया गया है, जिसका मूल अर्थ ''परखना'' है, परन्तु इसका दूसरा अर्थ *स्वीकृति* का संकेत देता है।[26] अनुवादित शब्द ''उत्तम-उत्तम बातों'' (*diaphero*) का अर्थ है ''वह जो अलग है,'' परन्तु इसका अर्थ जो सर्वश्रेष्ठ है भी हो सकता है।[27] दोनों शब्दों को इकट्ठा करने पर वाक्यांश का अर्थ उन बातों को परखने की योग्यता है जो अलग है यानी गलत से सही को पहचानना (NEB)। इसका अर्थ अच्छा, बहुत अच्छा और सबसे अच्छा के बीच चयन करने की क्षमता भी हो सकता है (NRSV)-उसे स्वीकृत करना जो सर्वोत्तम है (NIV)। इन शब्दों का संक्षिप्त अर्थ जो भी हो उनसे संकेत मिलता है कि यहूदी लोगों ने जो कुछ व्यवस्था से सीखा था उसे लागू करना भी सीख लिया था।

यहूदियों के पास ''ज्ञान, और सत्य का नमूना, जो व्यवस्था में है'' था (आयत 20ग)। ''नमूना'' का अनुवाद (*morphe*) के एक रूप से किया गया है, जिसका अर्थ ''किसी व्यक्ति या वस्तु का *आवश्यक स्वभाव* '' है।[28] मूसा की व्यवस्था पुराने नियम के समयों में ज्ञान और सच्चाई का सार थी।

मूसा की व्यवस्था पाना यहूदियों की सबसे बड़ी आशिषों में से एक थी। वे इस पर *भरोसा* करते थे (आयत 17ग)। आयत 17 में ''भरोसा रखता'' का अनुवाद (*epanapauo* से) किया गया है जो ''ऊपर'' (*epi*) ''विश्राम करना'' (*anapauo*) के अर्थ वाला एक मिश्रित शब्द है। यहूदी लोग व्यवस्था ''पर निर्भर'' थे, विशेषकर इस तथ्य पर कि केवल उन्हीं के पास यह थी, किसी दूसरे के पास नहीं। इसके अलावा वे ''व्यवस्था में'' *घमण्ड* करते थे (आयत 23); वे इस बात पर गर्व करते थे कि उन्हें (और केवल उन्हीं को) ''परमेश्वर के वचन सौंपे गए'' (3:2)। उनके लिए व्यवस्था का उनके पास होना ''जाति के लिए परमेश्वर की समर्थ का सबसे स्पष्ट संकेत है।''[29]

यहूदियों के पास पवित्र ईश्वरत्व अर्थात सच्चा परमेश्वर है। पौलुस ने यहूदियों के एक और अवसर का उल्लेख किया था, जो पहले बताए गए अवसरों से बहुत मिलता-जुलता था: परमेश्वर के चुने हुए लोगों के रूप में उसके साथ इनका विशेष सम्बन्ध था। उसने लिखा, ''[तू] परमेश्वर के विषय में घमण्ड करता है'' (2:17ग)। अनुवाद हुए शब्द ''घमण्ड करता'' (*kauchaomai*) का अर्थ ''महिमा करना,'' ''में फूले न समाना [या आनन्द करना]'' है।[30] (देखें 5:11)। अपने आप में नहीं, बल्कि परमेश्वर में महिमा करना सच्ची आराधना का सार है (देखें यिर्मयाह 9:23, 24)। परन्तु रोमियों 2:17 वाला महिमा करना या घमण्ड करना जितना अपने आप पर केन्द्रित था उतना परमेश्वर पर केन्द्रित नहीं था। यहूदी व्यक्ति का ''घमण्ड उस परमेश्वर में था जो उसे जानता था और जिसे उसे लगता था कि कोई और नहीं जानता।''[31] NIV में इस प्रकार है ''तू परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध पर शेखी मारता है।''

यहूदियों के पवित्र दायित्व थे: अगुआई करना, ज्ञान देना, सुधारना और शिक्षा देना। अपनी आशिषों के कारण यहूदी लोगों को ''भरोसा'' था (आयत 19)। ''भरोसा'' (*pepoithas*) का सम्बन्ध ''समझाना'' (*peitho*) शब्द से है। यहूदी लोग बिल्कुल समझते थे कि वे सही हैं और उनमें विशेष पवित्र दायित्वों को पूरा करने की हर आवश्यक योग्यता है।

पौलुस ने कहा, ''[तू] भरोसा रखता है कि मैं अन्धों का अगुवा, और अंधकार में पड़े हुओं की ज्योति और बुद्धिहीनों का सिखानेवाला, और बालकों का उपदेशक हूं'' (आयतें 19, 20क,

ख)। ''बालकों'' के लिए यूनानी शब्द (*nepion*) का मूल अर्थ ''बोलने की शक्ति के बिना'' था। जो बच्चों की ओर संकेत है। अन्ततः इसे नवजात शिशुओं, बच्चों या जवानों के लिए भी लागू किया जाता था (देखें आयत 20; KJV; NIV; RSV)। नये नियम में *nepion* का इस्तेमाल कई बार इन मसीहियों के लिए किया गया है, जो आत्मिक रूप में पक्के थे (1 कुरिन्थियों 3:1; इब्रानियों 5:13)। रोमियों 2:20 में इसका अर्थ सम्भवतया आत्मिक रूप से सच्चे *अन्यजातियों* है। यहूदी लोग अपने आपको अगुवे, ज्योति, सिखाने वाले, और उपदेशक मानते थे और अन्यजातियों को वे अंधे, अंधकार में पड़े हुए, बुद्धिहीन तथा बालक मानते थे।

19 और 20 आयतों के सम्बन्ध में दो तथ्यों को रेखांकित किया जाना चाहिए। पहला तो यह कि वे चाहे अन्यजातियों का विवरण सम्मानपूर्वक नहीं था तौ भी दोनों में से कोई भी बात गलत नहीं थी।[32] दूसरा, चाहे ये आयतें आत्मिक अक्खड़पन को दिखाती हैं, पर यहूदी कौम से परमेश्वर द्वारा की गई अपेक्षा के विवरण के लिए बिल्कुल सही हैं। सी. ई. बी. क्रेन्फील्ड ने लिखा है कि ''पौलुस द्वारा 19-20 आयतों में बताई गई सब बातें होना यहूदी का ईश्वरीय काम था।''[33] यह भी जोड़ा जा सकता था कि इन शब्दों को हम मसीही लोगों पर भी लागू कर सकते हैं: आप और मैं उन लोगों के अगुवे होने *चाहिए,* जो आत्मिक रूप में अंधे हैं (2 कुरिन्थियों 4:4), उनके लिए ज्योति जो आत्मिक अंधकार में हैं (गलातियों 3:1), मूर्खतापूर्ण व्यवहार करने वालों को सिखाने वाले (तीतुस 3:1-3) और आत्मिक रूप से बालकों को सिखाने वाले (देखें 1 कुरिन्थियों 3:1)।

कई लोग हमारे पाठ के वचनों का दुरुपयोग उन लोगों को गलत ठहराने के लिए करते हैं, जो (उनका कहना है) ''सोचते हैं कि वे सही हैं और दूसरे गलत हैं।'' यहूदियों की मुख्य समस्या यह नहीं थी। पुराने नियम के युग में उनके पास ''सही धर्म'' *था* जिसे एक सत्य परमेश्वर ने उन्हें दिया था जबकि शेष सम्राट अधिकतर ''गलत'' हैं। यहूदियों की समस्या यह नहीं थी कि उन्हें विशेष आशिषों से सम्मानित किया गया था या उन्हें प्रभावशाली ज़िम्मेदारियां दी गई थीं। उनकी समस्या यह थी कि वे अपनी क्षमता के अनुसार जीवन बिताने में असफल रहे थे; उन्होंने अपने भरोसे के साथ छल किया था। उन्हें लगता था कि केवल ''सही धर्म का होना'' ही काफी है।

(2) पूर्णतया बेमेल। अध्याय 2 के आरम्भिक वाक्यों के झटके के बाद, यहूदी लोग पौलुस की बातों से सहमत होकर सिर हिला रहे होंगे (आयत 17 से आरम्भ) करके। फिर पौलुस इस विनाशकारी निष्कर्ष के लिए उन्हें तैयार कर रहा था। आयत 17 में आरम्भ होने वाला ल-म-ब-ा वाक्य इस चौंकाने वाले प्रश्न के साथ समाप्त होता है: ''क्या तू जो औरों को सिखाता है, अपने आप को नहीं सिखाता?'' (आयत 21क)। फिलिप के संस्करण में है ''जैसे तू दूसरों को सिखाने के लिए तैयार है, क्या तू ने अपने आपको भी कभी सिखाया है?''

जब मैं बच्चों को पढ़ाता था तो मेरे पास द *मंकी एण्ड द मिरर* चित्रों वाली एक पुस्तक होती थी। यह एक शरारती बन्दर की कहानी थी, जो किसी न किसी के कचरे में हाथ मारता रहता था। ऐसा करते हुए एक दिन उसके मुंह पर लाल पेंट के धब्बे पड़ गए फिर उसे एक फैंका हुआ दर्पण मिल गया। उसने देखा कि वह दर्पण रौशनी में चमकता है तो वह दूसरे जानवरों की आंखों में चमक डालने के लिए जंगल में निकल गया। अन्ततः उसे बताया गया कि दर्पण का उद्देश्य *अपना मुंह* शीशे में देखने के लिए था। अन्त में जब उसने आइना देखा तो वह अपने लाल हुए चेहरे को देखकर चौंक गया! यहूदी लोग इस बन्दर की तरह थे। वे वचन के ''दर्पण'' का इस्तेमाल (देखें

याकूब 1:23-25) दूसरे के पापों पर ''रौशनी चमकाने'' के लिए कर रहे थे, पर उन्होंने अपने आपको दर्पण में नहीं देखा था।

पौलुस ने चकनाचूर कर देने वाले प्रश्नों की एक श्रृंखला से इस सच्चाई के साथ उन्हें चोट की: ''क्या तू जो चोरी न करने का उपदेश देता है, आप ही चोरी करता है? तू जो कहता है, व्यभिचार न करना, क्या आप ही व्यभिचार करता है? तू जो मूरतों से घृणा करता है, क्या आप ही मन्दिरों को लूटता है'' (रोमियों 2:21ख, 22)। पौलुस ने अन्यजातियों पर तीन तरह के पापों के दोषी होने का आरोप लगाया था, इस क्रम में यह मूर्तिपूजा, अनैतिकता, अशुद्धता और अन्याय है। अब उसने विपरीत क्रम में यहूदियों पर ऐसे ही पाप करने का आरोप लगाया।

अन्याय। ''क्या तू जो चोरी न करने का उपदेश देता है, आप ही चोरी करता है?'' (आयत 21ख)। अनुवादित शब्द ''चोरी'' (*klepto*) उस शब्द से लिया गया है, जिससे हमें अंग्रेज़ी ''kleptomaniac'' शब्द मिला है जिसका अर्थ ''चोरी की लत वाला व्यक्ति'' है। *Klepto* चोरी करना (बैंक लूटने की तरह) ऊधम मचाकर सार्वजनिक लूट में नहीं है; यह चुपके से, व्यक्तिगत रूप से की गई गुप्त चोरी है। आठवीं आज्ञा में कहा गया है, ''तू चोरी न करना'' (निर्गमन 20:15)। तौभी यहूदियों ने ऐसे तरीके ढूंढ़ लिए थे, जो सही अर्थों में किसी दूसरे के थे। यहूदी अगुओं ने मन्दिर को ''डाकुओं की खोह बना दिया था'' (मत्ती 11:17)। फरीसी लोग ''अंधेर से भरे हुए'' थे (मत्ती 23:25); वे ''विधवाओं के घरों को खा जाते थे'' (देखें मरकुस 12:40)। वयस्क यहूदी अपने माता पिता की उस सहायता और समर्थन को ''लूट लेते'' थे, जो उन्हें करनी चाहिए थी (मरकुस 7:9-13)।

अनैतिकता। ''तू जो कहता है, व्यभिचार न करना, क्या आप ही व्यभिचार करता है?'' (रोमियों 2:22क)। CEV में इस प्रकार है ''तू कहता है लोगों को विवाह में वफ़ादार होना चाहिए, पर क्या तू वफ़ादार है?'' ''तू व्यभिचार न करना'' (निर्गमन 20:14)। संसार को व्यभिचार के पाप की बीमारी हमेशा से रही है और यहूदी लोग भी इसका अपवाद नहीं थे (देखें यिर्मयाह 5:7, 8)। जे. डब्ल्यू. मैक्गर्वे के अनुसार ''यहूदी तालमूढ के अधिक प्रसिद्ध रब्बियों को व्यभिचार का आरोपी ठहराया गया था।[34] जब भी मैं व्यभिचार में पकड़ी स्त्री की कहानी पढ़ता हूं (यूहन्ना 7:53-8:11)। मुझे आश्चर्य होता है कि ''व्यभिचार में पकड़ा गया *आदमी* कहां था? उन्होंने *उसके* पाप को नज़रअंदाज क्यों किया?''

मूर्तिपूजा। ''तू जो मूर्तों से घृणा करता है, क्या आप ही मन्दिरों को लूटता है?'' (रोमियों 2:22ख)। यह उन आयतों में से एक है, जिनका अर्थ सम्भवतया मूल पाठकों को स्पष्ट था, चाहे हमारे लिए यह अस्पष्ट है। हम इतना जानते हैं कि लोगों के रूप में यहूदी लोग मूर्तियों से घृणा करते थे। पुराने नियम के अधिकतर समय में मूर्तिपूजा से उनका संघर्ष होता रहता था पर अपने मनों में मूर्तियों के विरुद्ध दृढ़ता से विचार बनाकर वे बाबुल की दासता से लौटे थे।[35] इस प्रकार वाक्य का पहला भाग स्पष्ट है, परन्तु ''क्या आप ही मन्दिरों को लूटता है?'' पूछने से पौलुस का क्या अर्थ था?

कई लेखकों का अवलोकन है कि पिछले दो प्रश्नों में हर प्रश्न का दूसरा भाग प्रश्न के पहले भाग का दोहराव है। इस कारण वे यह ज़ोर देते हैं कि किसी न किसी तरह ''मन्दिरों को लूटना'' यहूदियों के वही मूर्तिपूजा करने की बात है जिससे घृणा करने का वे दावा करते थे। अन्य इस

वाक्यांश का अर्थ ''उस पवित्र [जन] को लूटना'' बताते हैं, जिसका वह हकदार है।

हम पक्का नहीं कह सकते कि इस विशेष विषय पर पौलुस के कहने का क्या अर्थ है,[36] पर कुल मिलाकर कोई भी इन तीनों प्रश्नों के ज़ोर को नहीं भूल सकता कि यहूदी लोग *बेमेल* थे। वे कहते कुछ थे और करते कुछ थे। वे प्रचार तो करते थे लेकिन उसे व्यवहार में नहीं लाते थे। फिर हमें अपने आप पर भी लागू करना आवश्यक है।[37] हम चोरी करने के विरुद्ध बातें करते हैं, पर क्या हम अपने हर लेन-देन में ईमानदार हैं? हम शारीरिक पाप को गलत ठहराते हैं पर क्या हमारे मन हमेशा शुद्ध रहते हैं (देखें मत्ती 5:27, 28)। हो सकता है कि हम मूर्तियों को सजदा न करें, पर क्या हमें यह अहसास है कि ''लोभ ... मूर्तिपूजा के बराबर है'' (कुलुस्सियों 3:5)?

(3) दुखद परिणाम: इस शृंखला में पौलुस ने एक और प्रश्न पूछना था, जिसमें यहूदियों के अपनी बात से मेल न खाने के साथ दुखद परिणाम पर ज़ोर दिया गया: ''तू जो व्यवस्था के विषय में घमण्ड करता है,[38] क्या व्यवस्था न मानकर, परमेश्वर का अनादर करता है?'' (रोमियों 2:23)। यहूदी लोग एक पल में व्यवस्था पर गर्व करते थे और अगले पल में इसे तोड़ देते थे? जैसा कि रिचर्ड रोज़र ने ध्यान दिलाया है कि जो ''टूटा हुआ'' हो उस पर ''भरोसा करना'' खतरनाक है (देखें आयत 17)![39]

यहूदी लोगों को बहुत से अवसर दिए गए थे, पर सम्पत्तियों का होना दायित्व बन सकता था। इस तथ्य का कि परमेश्वर ने यहूदियों का पक्ष लिया था, अर्थ यह था कि उन्हें अधिक ज़िम्मेदारियां दी गई थीं (देखें याकूब 3:1)। आमोस नबी ने इस्राएलियों को चेतावनी दी थी, ''पृथ्वी के सारे कुलों में से मैंने केवल तुम्हीं पर मन लगाया है, *इस कारण* मैं तुम्हारे सारे अधर्म के कामों का दण्ड दूंगा'' (आमोस 3:2)। यहां उन लोगों के लिए जिन्हें बहुतायत से आशीष मिली है, चेतावनी दी गई है। ''जिसे बहुत सौंपा गया है, उससे बहुत उम्मीद की जाएगी'' (लूका 12:48; NCV)।

यहूदियों के परस्पर विरोध में न केवल उन्हें बल्कि प्रभु के साथ उनके सम्बन्ध को भी प्रभावित किया; इसमें दूसरों को भी विपरीत अर्थ में प्रभावित किया। पौलुस ने पूछा, ''क्या व्यवस्था न मानकर परमेश्वर का अनादर करता है?'' (रोमियों 2:23)। इसका समझ आने वाला उत्तर है हां: ''हां जब तुम उसकी व्यवस्था को तोड़ते हो, तो तुम परमेश्वर का अनादर करते *हो*।'' यह बात पक्की है कि ''संदेश को संदेशवाहक से नापा जाता है।''[40] यहूदी लोग अन्यजातियों को परमेश्वर के निकट लाने वाले होने चाहिए थे, पर उनके जीवनों से वे दूर चले गए हैं।

इसके सत्य होने के प्रमाण के रूप में पौलुस ने पुराने नियम का हवाला दिया: ''क्योंकि तुम्हारे कारण अन्यजातियों में परमेश्वर के नाम की निन्दा की जाती है, जैसा लिखा भी है'' (रोमियों 2:24)। यह आयत सम्भवतया यशायाह 52:5 के यूनानी अनुवाद (सप्तति) से ली गई है।[41] यशायाह ने अन्यजातियों के परमेश्वर का मज़ाक बनाने की बात लिखी क्योंकि उन्हें लगता था कि वह अपने लोगों की रक्षा करने और उन्हें दासता से निकालने के अयोग्य है। सच्चाई यह थी कि इस्राएल के पापों के कारण उसे दासता मिली थी, सो परमेश्वर के नाम की निंदा के लिए ज़िम्मेदार इस्राएलियों के *पाप* थे। इसी प्रकार पौलुस के समय में यहूदियों के *पापी होने* के कारण गैर यहूदियों में परमेश्वर का नाम बदनाम हो रहा था। पौलुस ने बदचलनी की बात लिखी, जबकि यशायाह ने विपत्ति की बात लिखी थी;[42] परन्तु दोनों ही परमेश्वर के नाम की निंदा के कारण थे। सैनिक पराजय की तरह नैतिक दोष में प्रभु का नाम बदनाम हुआ।[43] मोसेस ई. लार्ड ने लिखा था,

''काफ़िर लोग ... मनुष्य के देवता का न्याय उसके आचरण से करते थे। भला मनुष्य, भला देवता; बुरा मनुष्य, बुरा देवता।''[44] युगों से प्रभु के सबसे बड़े शत्रु कठोर अविश्वास नहीं बल्कि अप्रतिबद्ध विश्वासी रहे हैं। रूडियर्ड किपलिंग ने लिखा है, ''पर उसका चेला उसे सबसे अधिक घात देगा''[45] अन्यजातियां मूर्तिपूजा, अनैतिकता और अन्याय की दोषी थीं, परन्तु परमेश्वर लोगों के मन में अपमानित नहीं हो रहा था, परन्तु जब यहूदियों ने वही पाप किए तो परमेश्वर मज़ाक का कारण बन गया।

हम उसे अपने ऊपर लागू कर सकते हैं और करना भी चाहिए। हमें भी एक पवित्र नाम (''मसीही'') और एक पवित्र दस्तावेज़ (नया नियम), एक पवित्र परमेश्वर (हमारा बहुमूल्य प्रभु) और पवित्र ज़िम्मेदारियां (यीशु और प्रेरितों द्वारा जिनकी रूपरेखा दी गई है) मिले हैं। हम इसमें महिमा करते, परन्तु जब हम मसीही लोगों की तरह काम करने में असफल हों, नये नियम की बात न मानकर, और अपने जीवनों से प्रभु को महिमा न दे पाएं तो आज भी अविश्वासियों के बीच में परमेश्वर के नाम की निंदा होती है!

पौलुस का आरोप कि यहूदी लोगों के पाप के कारण अन्यजातियों में परमेश्वर का नाम बदनाम हुआ, यहूदियों पर उसके दोष का चरम था। हो सकता है कि वे आत्मिक और धार्मिक रूप से अन्यजातियों से श्रेष्ठ हों, पर इसके बावजूद वे पापी थे जिन्हें परमेश्वर की धार्मिकता की आवश्यकता थी!

बहुत धार्मिक होना किसी का उद्धार नहीं करेगा

पहले मैंने कहा था कि बहुत से लोगों को लगता है कि वे अच्छे जीवन, नैतिक जीवन के आधार पर उद्धार पाएंगे। ऐसे भी बहुत से लोग हैं जिन्हें लगता है कि वे बहुत धार्मिक हैं इसलिए उनका उद्धार हो जाएगा। वे धार्मिक रीतियों और कर्मकांडों को मानते हैं; वे धार्मिक काम करते हैं और वे आराधना करते हैं। यह सब अपने आप में किसी का उद्धार नहीं करेगा। यीशु ने न्याय के दिन कुछ धार्मिक लोगों की तस्वीर बनाई:

> जो मुझे हे प्रभु, हे प्रभु, कहता है, उन में से हर एक स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करेगा, परन्तु वही जो मेरे स्वर्गीय पिता की इच्छा पर चलता है। उस दिन बहुतेरे मुझ से कहेंगे, हे प्रभु, हे प्रभु, क्या हम ने तेरे नाम से भविष्यवाणी नहीं की, और तेरे नाम से दुष्टात्माओं को नहीं निकाला, और तेरे नाम से बहुत अचम्भे के काम नहीं किए? तब मैं उन से खुलकर कह दूंगा कि मैंने तुम को कभी नहीं जाना। हे कुकर्म करने वालो, मेरे पास से चले जाओ (मत्ती 7:21-23)।

कृपया मुझे गलत न समझें, हमें धार्मिक होना आवश्यक है। कई लोग खराब अर्थों के डर से ''धर्म'' शब्द को नकार देते हैं, परन्तु बाइबली लेखकों ने इस शब्द का इस्तेमाल करने में कोई हिचकिचाहट नहीं की। उदाहरण के लिए, याकूब ने लिखा, ''हमारे परमेश्वर और पिता के निकट शुद्ध और निर्मल *भक्ति* यह है, कि अनाथों और विधवाओं के क्लेश में उनकी सुधि लें, और अपने आपको संसार से निष्कलंक रखें'' (याकूब 1:27)। यूनानी शब्द (*threskeia*) का अनुवाद धर्म के ''बाहरी पहलू'' का संकेत है।[46] अन्य शब्दों में इसका अर्थ है कि हम परमेश्वर के साथ अपने

अंदरूनी सम्बन्ध को *बाहरी रूप से व्यक्त* कैसे करते हैं। यदि आप अपने जीवन साथी से प्रेम करने का दावा करते हैं पर कभी इस प्रेम को *व्यक्त* नहीं करते तो आपके जीवन साथी को आपके प्रेम की सच्चाई पर संदेह हो सकता है। यदि हम सचमुच में प्रभु से प्रेम करते हैं तो हम उसकी इच्छा पूरी करने और उसे प्रसन्न करने की कोशिश करके अपने प्रेम को व्यक्त करेंगे (यूहन्ना 14:15, 21; 1 यूहन्ना 5:3; 2 यूहन्ना 6)। यानी हम ''धार्मिक'' होंगे।

बेशक केवल धार्मिक होना ही काफ़ी नहीं है। सच्ची भक्ति (याकूब 1:27) है और झूठी भक्ति भी है (देखें कुलुस्सियों 2:23)।

रोमियों 2:17-24 में पौलुस यह नहीं कह रहा था कि सही नाम का इस्तेमाल करना, सही दस्तावेज होना, सही परमेश्वर की आराधना करने और सही ज़िम्मेदारियां निभाने में कोई बुराई है। निश्चय ही उसने चोरी करने, व्यभिचार और मूर्तिपूजा के विरुद्ध सिखाने को हतोत्साहित कभी नहीं किया, परन्तु वह इस बात पर ज़ोर दे रहा था कि केवल धर्म चाहे वह सही धर्म ही क्यों न हो किसी को बता नहीं सकता। यदि धर्म अकेला बचा सकता तो परमेश्वर केवल किसी धार्मिक गुरु को भेज देता। इसके बजाय उसे हमारे लिए क्रूस पर मरने के लिए एक उद्धारकर्त्ता अर्थात अपने पुत्र को भेजना पड़ा!

सारांश

पौलुस के अन्यजातियों को दोषी ठहराने से यहूदियों पर अभियोग लगाने पर यहूदी लोग कितने हैरान हुए होंगे! उनके लिए यह मानना कितना कठिन होगा कि वे भी अन्यजातियों की तरह पाप के दोषी हैं। आज हम अपने पापों से मन फिराने की आवश्यकता की बात करने लगते हैं तो संसार का मनुष्य आज भी वही प्रत्युत्तर देता है, ''निश्चय ही मैं *वह* नहीं हो सकता।'' मनुष्य जाति के हर जगह पापी होने की चर्चा करते हुए शायद यह भी प्रतिक्रिया आई है: ''मैं? निश्चय ही तुम मुझे नहीं कह रहे!'' आप एक भले, एक सदाचारी व्यक्ति हो सकते हैं आप बहुत धार्मिक हो सकते हैं। परन्तु समझ लें कि ये विशेषताएं अपने आप में आपका उद्धार नहीं कर सकती। यदि आपका उद्धार होता है तो वह केवल परमेश्वर के अनुग्रह से होगा।

इससे पहले कि आपका *उद्धार* हो सके, आपके लिए यह समझना आवश्यक है कि आप *खोए हुए* हैं। जॉन आर. डब्ल्यू. स्टॉट ने लिखा है:

> समस्या का इनकार करें, और इसका कुछ भी नहीं हो सकता; समस्या को मान लें तो समाधान की सम्भावना तुरन्त रहती है। यह महत्वपूर्ण है कि शराबियों के गुमनाम ''बारह कदमों'' में से पहला यह है: ''हमने माना कि हम शराब पर बेबस हैं और हमारे जीवन हमारे काबू में नहीं हैं।''[47]

क्या आप मानने को तैयार हैं कि आप पापी हैं, अपनी पापपूर्ण स्थिति पर बेबस हैं? तो अपने पापों से मन फिराकर प्रेमपूर्ण, भरोसा रखते हुए आज्ञाकारिता के साथ प्रभु के पास आएं (यूहन्ना 14:15; प्रेरितों 2:36-38; 22:16) ताकि वह आपके पापों से शुद्ध कर सके।

टिप्पणियां

[1]अन्य कारण जोड़े जा सकते हैं, उदाहरण के लिए रोमियों 2:1-16 में बेशक अन्यजातियों का उल्लेख है पर उनका वर्णन है न कि उन्हें *सम्बोधन* (देखें आयतें 9, 10, 12, 14, 15)। [2]कई लेखकों का मानना है कि संदर्भ संकेत देता है कि मत्ती 7:3-5 में ''तिनका'' और ''लट्ठा'' एक ही चीज़ के बने थे। [3]पौलुस ''diatribe'' नामक प्राचीन साहित्य का इस्तेमाल करने लगा जिसमें वक्ता सा लेखक अपने श्रोताओं को अपने और काल्पनिक विरोधी के बीच हुई ''चर्चा सुनने'' देकर निर्देश देता था। [4]जे. डब्ल्यू. मैक्गोरमन, *लेमैन'स बाइबल बुक कमैंट्री,* अंक 20, *रोमन्स, 1 कुरिन्थियंस* (नैशविल्ले: ब्रॉडमैन प्रैस, 1980), 32 से लिया गया। [5]जहां मैं रहता हूं वहां हम कह सकते हैं, ''वे उसे हूटिंग कर रहे और सीटियां बजा रहे थे।'' संसार के कुछ भागों में आप कह सकते हैं, ''अनैतिकता से शाबाश देने के बजाय'' उन्होंने इसे ''गालियां'' दी होंगी। [6]यूनानी धर्मशास्त्र में पौलुस ने कहा ''हे मनुष्य, हर कोई'' (देखें KJV) यह ''मनुष्य'' (जिसे आयत 3 में भी सम्बोधित किया गया है) पौलुस का काल्पनिक विरोधी है। [7]डब्ल्यू. ई. वाइन, मैरिल एफ़. अंगर, एण्ड विलियम व्हाइट, जूनि., *वाइन'स कम्पलीट एक्पोज़िटरी डिक्शनरी ऑफ़ ओल्ड एण्ड न्यू टैस्टामेंट वर्ड्स* (नैशविल्ले: थॉमस नेल्सन पब्लिशर्स, 1985), 119. [8]इस पद्य को अपने समाज में लागू होने वाले उदाहरणों को शामिल करने के लिए मिलाएं। [9]चॉर्ल्स आर. स्विन्डल, *कमिंग टू टर्मस विद सिन: ए स्टडी ऑफ़ रोमन्स 1-5* (अनाहिम, क्लॉरनिया: इनसाइड फ़ॉर लिविंग, 1999), 31. [10]जिम्मी एलन, *सर्वे ऑफ़ रोमन्स,* चौथा संस्क. (सिरस, आरकैंसा: लेखक द्वारा, 1973), 44.

[11]इस और अगली आयत में हम अगले पाठ में चर्चा करेंगे। [12]विलियम बार्कले, *द लैटर टू द रोमन्स,* संशो. संस्क., दि डेली स्टडी बाइबल सीरीज़ (फिलाडेल्फिया: वेस्टमिंस्टर प्रैस, 1975), 41. [13]बार्कले, 41 में उद्धृत। [14]वही। [15]*मिशनाह सनहेद्रिन* 10:1. [16]*अकेदथ जिजहक* (fol. 54, col. 2); जेम्स बर्टन कॉफमैन, *कमैंट्री ऑन रोमन्स* (ऑस्टिन, टैक्सस: फर्म फाउंडेशन पब्लिशिंग हाउस, 1973), 62 में उद्धृत। [17]डी. स्टॉट ब्रिस्को, *मास्टरिंग द न्यू टैस्टामेंट: रोमन्स,* द कम्युनिकेटर'स कमैंट्री सीरीज़ (डलास: वर्ड पब्लिशिंग, 1982), 56 से लिया गया। [18]लैरी डीयसन, *''दि राइटियसनेस ऑफ़ गॉड'': एन इन-डेप्थ स्टडी ऑफ़ रोमन्स,* संशो. (क्लिफटन पार्क, न्यू यॉर्क: लाइफ कम्युनिकेशंस, 1989), 81. [19]आयत 17 से 21 यूनानी में और NASB में एक वाक्य है। [20]इस भाग में चार अवसरों में से दो रिचर्ड रोजर्स, *पेड इन फुल: ए कमैंट्री ऑन रोमन्स* (लब्बॉक, टैक्सस: सनसैट इंस्टीट्यूट प्रैस, 2002), 40 से लिए गए हैं।

[21]''कहलाता'' एक मिश्रित शब्द (*eponomazo*) से लिया गया है, जिसका अर्थ ''नाम देना'' (*onomazo*) ''पर'' (*epi*) है, अन्य शब्दों में ''नाम से पुकारना'' (वाइन, 425-26). [22]यूनानी धर्मशास्त्र में रोमियों 2:17 में *nomos* से पहले कोई निश्चित उप-पद (अंग्रेज़ी में ''the'') नहीं है। रोमियों पर अध्ययन करते हुए ध्यान रखें कि *nomos* से पहले निश्चित उप-पद का होना या न होना इसके अर्थ तो तय करेगा। [23]अध्याय 3 में पहुंचकर हम व्यवस्था का शब्द अध्ययन करेंगे। [24]यूनानी धर्मशास्त्र में केवल ''इच्छा'' है, परन्तु संदर्भ यह तय करता है कि यह परमेश्वर की *इच्छा* है। [25]वाइन, 328 से लिया गया। [26]लियोन मौरिस, *दि एपिस्टल टू द रोमन्स* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1988), 132; वाइन, 35. ऐसा ही शब्द जिसका अनुवाद ''उपयुक्त लगे'' है 1:28 में इस्तेमाल किया गया है। [27]मौरिस, 132; वाइन, 214 से लिया गया। [28]वही, 39. [29]मौरिस, 131. [30]वाइन, 71.

[31]मौरिस, 131. [32]अध्याय 1 में पौलुस ने अन्यजातियों को ''अंधेरे'' मनों वाले और ''निर्बुद्धि'' बताया (आयतें 21, 22)। 2:19 में ''अंधकार'' (*skotia*) शब्द उसी मूल शब्द से लिया गया जिससे 1:21 में ''अंधेरा।'' 2:20 ''बुद्धिहीनों'' (*aphron*) के लिए शब्द 1:21, 22 में ''निर्बुद्धि'' और ''मूर्ख'' शब्दों से अलग है। [33]सी. ई. बी. क्रेनफील्ड, *रोमन्स: ए शार्टर कमैंट्री* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1985), 55. [34]जे. डब्ल्यू. मैक्गर्वे एण्ड फिलिप वाई. पैंडलटन, *थिस्सलोनियंस, कुरिन्थियंस, गलेशियंस एण्ड रोमन्स* (सिनसिनाटी स्टैंडर्ड पब्लिशिंग, तिथि नहीं), 314. [35]उनके बीच रोमी अधिकारियों के साथ अधिकतर झगड़े मूर्तियों पर थे। [36]इस पुस्तक में आगे ''परमेश्वर के प्रति अश्रद्धा?'' देखें। [37]अपने समाज के लिए उपयुक्त प्रासंगिकताओं को अपनाएं और इन्हें विस्तार दें। [38]इस वाक्य में पहले ''Law'' से पहले कोई निश्चित उप-पद (अंग्रेज़ी में ''the'') नहीं है, परन्तु दूसरे ''Law'' से पहले है। संदर्भ यह स्पष्ट करता है कि पौलुस के मन में मूसा की व्यवस्था थी। [39]रोजर्स, 40. [40]जॉन. डी.

व्हाइट, सीनि., क्लास नोट्स, *रोमन्स,* ट्राय-स्टेट स्कूल ऑफ़ प्रीचिंग एण्ड बिब्लिकल स्टडीज़, इवनेसविल्ले, इंडियाना (1988)।

[41]कई लेखक यह भी ध्यान दिलाते हैं कि यह भावना यहेजकेल 36:20, 21 की है। [42]एफ. एफ. ब्रूस, *दि लैटर ऑफ़ पॉल टू द रोमन्स,* दि टिंडेल न्यू टैस्टामेंट कमैंट्रीज़ (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1985), 88. [43]जॉन आर. डब्ल्यू. स्टॉट, *दि मैसेज ऑफ़ रोमन्स: गॉड'स गुड न्यूज फ़ॉर द वर्ल्ड,* दि बाइबल स्पीक्स टुडे सीरीज़ (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोइस: इंटर-वर्सिटी प्रैस, 1994), 92 से लिया गया। [44]मोसेस ई. लार्ड, *कमैंट्री ऑन पॉल'स लैटर टू रोमन्स* (लेक्सिंगटन, केंटकी 1875; रीप्रिंट, डिलाइट, आरकैंसा: गॉस्पल लाइट पब्लिशिंग कं., तिथि नहीं), 95. [45]रुडयर्ड, किपलिंग, ''दि डिसाइपल,'' *रुडयर्ड किपलिंग'स वर्स* def. ed. (गार्डन सिटी, न्यू यार्क: डबलडे एण्ड कं., 1940), 782. किपलिंग (1865-1936) एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी नावलकार, लघु कहानी लेखक और कवि था। [46]वाइन, 520. [47]स्कॉट।

परमेश्वर के प्रति अश्रद्धा?

''तू जो मूर्तों से घृणा करता है, क्या आप ही मन्दिरों को लूटता है?'' (रोमियों 2:22ख) का अनुवाद एक यूनानी शब्द (*hierosulos*) से किया गया है, जो ''लूटना'' (*sulao*) के लिए शब्द के साथ ''मन्दिर'' (*hieron*) के लिए शब्द को मिलाता है। *Hieron* का अर्थ है ''पवित्र [स्थान]'' या ''पवित्र [वस्तु],'' सो *hierosulos* का अर्थ प्रतीकात्मक रूप में ''लूटना'' हो सकता है, जो इसे देय सम्मान के लिए पवित्र है (''पवित्र स्थान को लूटना'' [देखें KJV])।

एक लेखक ने यह निष्कर्ष निकाला कि पौलुस यह कह रहा था, ''तुम यहूदी लोग मूर्तियों से घृणा करने का दिखावा करते हो; पर काफ़िरों के मन्दिरों से उन्हें चुराते हो और उनकी [पूजा और] सेवा करते हो।''[1] अन्य इस बात से सहमत हैं कि ''मन्दिर'' सम्भवतया मूर्तिपूजक लोगों के मन्दिरों को कहा गया है (फिलिप्स; NLT), परन्तु वे इस बात पर सहमत नहीं हो सकते कि यहूदी लोग उन्हें कैसे ''लूटते'' थे। अन्यजातियों के मन्दिर कई बार धनवानों की सम्पत्ति रखने के लिए इस्तेमाल किए जाते थे। इसलिए यह प्रस्ताव दिया गया है कि यहूदी लोग कई बार उन खज़ानों को चुरा लेते थे। सुझाव यह भी दिया गया है कि कुछ यहूदी कीमती धातुओं से बनी छोटी-छोटी मूर्तियां चुरा लेते और उस धातु को ढालकर बेच देते थे। नये नियम में केवल एक और जगह जहां मूर्तियों को लूटने की बात की गई है (प्रेरितों 19:37), से लगता है कि यह वैसी ही डकैती के बारे में है, जिसका अभी हमने उल्लेख किया। यह भी ध्यान दिया गया है कि यहूदी लोग जिस बात को तुच्छ मानने का दावा करते थे उससे लाभ नहीं ले सकते थे। यहूदी लेखों के अनुसार, कुछ यहूदी लोग मूर्तियां लेकर उन्हें अन्यजाति उपासकों को अत्यधिक महंगी कीमत पर बेचते थे।[2] यह उस सामान्य प्रासंगिकता के लिए जो पौलुस के मन में होगी, बहुत सीमित लगती है।

कुछेक लेखकों का मत है कि ''मन्दिरों को लूटना'' यरूशलेम के यहूदी मन्दिर को लूटने के सम्बन्ध में है। मलाकी ने कहा था कि उसे जो याजकों को दिया जाना चाहिए था, अपने पास रखकर यहूदियों ने साधारण अर्थ में ''परमेश्वर को लूट लिया'' था (देखें मलाकी 3:8)। जोसेफस ने उन याजकों की बात की है, जिन्होंने मन्दिर के लिए रखे धन का दुरुपयोग किया।[3] इस कारण AB रोमियों 2:22 के अन्तिम भाग को पढ़ने के लिए विस्तार देता है, ''[जो कुछ परमेश्वर की सेवा के लिए अर्पित है क्या तू उसे अपने इस्तेमाल के लिए काम में लाता है, यह उपासना स्थल

और मन्दिर को लूटना है] ?''

कई टीकाकार इस विचाराधीन प्रश्न के वाक्यांश को लेकर उसका अर्थ ''पवित्र [जन] को लूटना'' निकालते हैं। रिचर्ड बैटे ने लिखा है, ''[पौलुस] उस यहूदी पर आरोप लगा रहा है जो मूर्तियों से घृणा करता है, क्योंकि परमेश्वर के प्रति बेरोक-टोक श्रद्धा के आगे झुकने से जो कि उसका अधिकार है, इनकार करके वह पहली [और दूसरी] आज्ञाओं को नहीं तोड़ेगा [निर्गमन 20:3, 4] उन्होंने अपने जीवनों पर परमेश्वर की पवित्रता को लूटा।''[14] चार्ल्स स्पर्जन ने लिखा:

> ''परमेश्वर के मन्दिर को लूटना'' अपवित्रता के अधिक असामान्य अर्थ अर्थात परमेश्वर और पवित्र वस्तुओं के अश्रद्धापूर्वक अपमान ... में समझा जा सकता है। संदर्भ यही मांग करता है: ''मूर्तिपूजा से [बचकर] तुम परमेश्वर के लिए बड़ी श्रद्धा दिखाते हो, परन्तु दूसरी तरह से तुम सबसे बड़ी अश्रद्धा के दोषी हो।''[15]

क्योंकि संक्षेप में यह अस्पष्ट है कि मन्दिरों को लूटने के सम्बन्ध में पौलुस के मन में क्या था, इसलिए हम किसी एक व्याख्या के बारे में स्पष्ट नहीं कह सकते। तौभी पौलुस की बात स्पष्ट है कि यहूदी लोग अपनी ही बात पर टिके न रहने के दोषी थे।

टिप्पणियां

[1]मोसेस ई. लार्ड, *कमैन्ट्री ऑन पॉल 'स लैटर टू रोमन्स* (लैक्सिंग्टन, कैंटकी: पृष्ठ नहीं, 1875; रिप्रिंट, डिलाइट, आरकैंसा: गॉस्पल लाइट पब्लिशिंग कं., तिथि नहीं), 94 से लिया गया। [2]लियोन मौरिस, *दि एपिस्टल टू द रोमन्स* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1988), 137. [3]जोसेफस *एंटिकुइटीस* 18.3.5. [4]रिचर्ड ए. बैटे, *द लैटर ऑफ़ पॉल टू द रोमन्स,* द लिविंग वर्ड कमैंट्री (आस्टिन, टैक्सस: आर. बी. स्वीट कं., 1969), 41. [5]चार्ल्स हौज, *रोमन्स,* द क्रॉसवे क्लासिक (व्हीटन, इलिनोइस, क्रॉसवे बुक्स, 1993), 59-60.